ISSN: 2347-2723 Impact Factor : 2.0260(UIF) Volume - 4 | Issue - 1 | August - 2016

Review of Literature

प्रेमचन्द के उपन्यासों में समसामयिक सामाजिक समस्याएँ

डॉ. सौरभ कुमार
पी.एच.डी. हिन्दी शोध –केन्द्र एस.सी.डी. राजकीय महाविद्यालय, लुधियाना.

प्रस्तावना–

प्रेमचन्द ने अपने मित्र केशोराम सव्वरवाल के नाम अपने एक पत्र में लिखा था कि उन्होंने कमोवेश समाज की बुराईयों का पर्दाफाश करने के उद्देश्य से 'निर्मला' और 'प्रतिज्ञा' शीर्षक से दो छोटे उपन्यास लिखे हैं।[1]

'निर्मला' में समाज के जालिम ढकोसले, लेन–देन की नहूसते, बेवा की बेचारगी और निपट अकेलापन और अनमेल ब्याह की गुत्थियों की प्रस्तुति हुइ है।[2] इस प्रकार निर्मला एक छोटा–सा सामाजिक उपन्यास है। जिसमें मुख्य रूप से दहेज की प्रथा और तद्जन्य विकृतियों का चित्रण हुआ है। निर्मला के पिता वकील उदयभानु की कमाई अच्छी थी पर उनमें संचय–वृत्ति नहीं थी।[3] वकील साहब की मृत्यु के बाद परिवार आर्थिक दृष्टि से विपन्न हो गया।[4] वकील साहब के जीवनकाल में ही निर्मला का विवाह आयकारी विभाग के भालचन्द्र सिन्हा के पुत्र भुवनचन्द्र के साथ निश्चित हुआ था।[5] वह पक्ष ने वकील साहब की आमदनी देखकर यह समझ लिया था कि वकील साहब अपनी लड़की की शादी धूम–धाम से करेंगे और ऐसे व्यक्ति के साथ दहेज की रकम स्थिर करने से अधिक लाभप्रद यही है कि उस प्रश्न को वकील साहब की मर्जी पर ही छोड़ दिया जाये। वकील साहब के दिवंगत होते ही अपशकुन का बहाना बनाकर विवाह सम्बन्ध तोड़ दिया।[6] इस प्रकार निर्मला उस घर की बहू बनकर न जा सकी।

इस संबंध के टूटने के बाद कल्याणी ने तोताराम से जो 45 वर्ष का था उससे अपनी 15 वर्ष की कोमल निर्मला का ब्याह कर देती है।

प्रेमचन्द ने बताया कि बेटे वालों के आगे एक ही बात का महत्व है और वह है दहेज।[7] दहेज की कुप्रथा माँ की ममता पर हावी हो जाती है। दहेज प्रथा का अभिशाप निर्मला की जिन्दगी खराब करता ही है तोताराम के परिवार को भी छिन्न–भिन्न कर डालता है।

'कायाकल्प' में भी चक्रधर के विवाह–सम्बन्ध के निर्धारण के समय दहेज का प्रश्न खड़ा होता है। चक्रधर पढ़ा–लिखा तो है ही। उस पर दहेज प्रथा के विरूद्ध होने वाले सुधार–कार्य का प्रभाव भी है। इसी से वह डटकर कहता है कि दहेज लेना तो अपने लड़के को बैल–घोड़े की तरह बेचने जैसा है। और वह बिकाऊ होने को तैयार नहीं है।[8] दहेज की इस कुप्रथा को सामाजिक विकृति तो प्रेमचन्द मानते ही थे लेकिन उसके आर्थिक पहलू को भी उन्होंने सदा अपने ध्यान में रखा था।

प्रेमचन्द के उपन्यास में जिस युग का प्रतिफलन हुआ है उसका महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं में एक समस्या हिन्दू विधवाओं की भी थी। प्रेमचन्द युग के हिन्दू समाज में विधवा नारी एक प्रकार के जीवित लाश हुआ करती थी। परिवार में किसी मांगलिक अवसर पर उसकी छाया भी अशुभ मानी जाती है। इस प्रकार हिन्दू विधवा अपने वैधव्य का पूरा दण्ड भोगती है। सच्ची और स्पष्ट बात यह है कि परिवार में उसके लिए कोई स्थान नहीं होता है।

किन्तु आगे चलकर राजा राममोहनराय ने इस अमानुषिक प्रथा का उग्र विरोध किया और सरकार से कानून बनवाकर सती प्रथा को अवैध घोषित करवाया।

हमारा धर्म विधवा के पुनर्विवाह की स्वीकृति नहीं देता। हिन्दू विधवा को यह अधिकार नहीं है कि वह इच्छानुसार पुनर्विवाह कर ले। हमारे ही हिन्दू समाज के निचले वर्ग में विधवा–विवाह प्रचलित है। यही कारण है कि उस वर्ग में विधवा समस्या है ही नहीं। लेकिन ऊँची जातियों की विधवाओं को इस प्रकार की सुविधा नहीं है। उन्हें भी यदि यह सुविधा होती तो विधवा समस्या की कठिनाइयों का प्रशन उनके आगे भी नहीं होता। 'प्रतिज्ञा' में विधवा पूर्णा का पुनर्विवाह न कराकर प्रेमचन्द ने उसे वनिताश्रम में भेजा है। अवश्य ही यह आश्रम विधवाओं के प्रति समाज के उत्तरदायित्व बोध का परिणाम है।

हिन्दू समाज में जिन विकृतियों और समस्याओं की ओर सुधारक–वर्ग का ध्यान अनायास खिंच जाता था उनमें वेश्या की समस्या भी एक है। 'सेवासदन' उपन्यास में इसे मुख्य रूप से उभारा गया है।

'सेवासदन' में भोलीबाई नाम एक वेश्या है। उसके पिता ने उसे दौलतमंद बड़े मिंया के गले मढ़ दिया था। जिसकी सूरत से ही उसे नफरत थी। छः महीने तो किसी तरह उसके साथ वह बिता सकी। लेकिन बार–बार मन में उसे यह कहकर उत्तेजित किया कि वह कोई भेड़ बकरी तो है नहीं कि माँ–बाप जिसके गले मढ़ दें उसी की हो रहे। और फिर वह विद्रोह करके घर से निकलकर बाजार में चली आयी। स्पष्ट है कि भोलीबाई के अनमेल विवाह का परिणाम है उसका असफल दाम्पत्य जीवन। भोलीबाई को अपने इस जीवन से विद्रोह हुआ और अन्त में वह वेश्या बनी।

भोलीबाई के ऐश्वर्य–भोग को देखकर सुमन के मन में अपनी गरीबी के प्रति विद्रोह का भाव उत्पन्न होता है। वह वेश्याजीवन को पाप कुण्ड ही समझती थी किन्तु परिस्थितिवश वह भी वेश्यावृत्ति अपनाने को विवश हो उठती है।[9] प्रेमचन्द वेश्या समस्या को हमारी दुषित आर्थिक व्यवस्था का अभिशाप मानते थे।

प्राचीन भारत के आर्यों ने समाज की व्यवस्था चार वर्गों में की है– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। अंग्रेजों के भारत में आ जाने के बाद मूलरूप से दो ही वर्ग प्रमुख थे। एक वर्ग शासक अंग्रेजों का था और दूसरा शासित भारतीयों का।

भारत का मध्यवर्ग वह वर्ग है जिसके पास समाज के सारे संस्कारों की पूंजी और उसकी सारी क्रियाशीलता की कुंजी है। प्रेमचन्द स्वयं इसी मध्यवर्ग से आये थे। उनके पात्र मुख्यतः इसी वर्ग से निकलअर आये हैं। मध्यवर्ग की सबसे सपफल अभिव्यक्ति प्रेमचन्द के जिस उपन्यास में हुई है वह है 'गबन'[10]।

'गबन' की जालपा सामन्ती वातावरण में पली हुई एक ऐसी लड़की है जो अल्प शिक्षिता और सामाजिक ज्ञान से हीन है और उसका पालन–पोषण दिखावे की दुनिया में हुआ है। दिखावे की इस दुनिया में दिखने की सबसे बड़ी चीज है– आभूषण। होश संभालने के बाद से ही वह यह सुनती आई है कि ब्याह में ससुराल से चन्द्रहार मिलेगा। विधि का विधान कुछ ऐसा विचित्र होता है कि ससुराल वालों से जहाँ दूसरे गहने मिले है चन्द्रहार नहीं मिलता। जिसकी वह बचपन से सपने संजोए हुए थी।[11]

मध्यवर्ग की एक बड़ी लाचारी यह है कि गरीब होने पर भी खुद को गरीब नहीं समझता। रामानाथ को अपने से ऊँची हैसियत वाली जालपा के आगे अपनी श्री सम्पन्नता का जैसा मुलम्मा खड़ा करना पड़ता है वैसा ही तो जालपा को अपने से अधिक सम्पन्न रतन के आगे दिखावा करना पड़ता है।

'गबन' का देवीदीन खटिक परिस्थितियों के चलते मध्य वर्ग से फिसलकर निम्नवर्ग तक आ गया है। मध्यवर्ग की साहस हीनता का शिकार 'सेवासदन' का दारोगा कृष्णचन्द साहसहीन इस अर्थ में है कि दहेज प्रथा को कोढ़ समझकर भी यह उसके विरूद्ध खड़ा नहीं हो पाता उल्टे बेटी के ब्याह में दहेज देने के लिए घूस लेता है। 'सेवासदन' की सुमन का जीवन भी तो उसकी मध्यवर्गीय प्रदर्शन प्रियता के कारण नष्ट हो जाता है।

'निर्मला' का पिता वकील उदयभना अपनी बेटी के ब्याह में अपनी हैसियत से कहीं आगे बढ़कर खर्च करना चाहता है सिर्फ इसलिए कि वह भी उस मध्य वर्ग का है जो अपनी समृद्धि का झूठा डंका पीटने के लिए लाचार है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक विकृतियों के विरूद्ध सिंहनाद किया गया है। नारी की हीन दशा, वेश्यावृत्ति, धार्मिक पाखण्ड और रूढ़ि अछूतों के प्रति सवर्णों का अनाचार ये ऐसे कुछ विषय थे जिनके विरूद्ध प्रेमचन्द के पात्र आन्दोलन करते हैं। 'सेवासदन' के पद्मसिंह और विठ्ठलदास, 'कायाकल्प' का चक्रधर, 'प्रतिज्ञा' का अमृतराय, 'कर्मभूमि' का अमरकान्त आदि ऐसे ही पात्र हैं।

प्रेमचन्द के 'गबन' के अन्त में उपन्यास के पात्रों को ग्रामोन्मुख किया है। वह सम्भवतः प्रस्तुत समस्या का उनका समाधान है। किसानों को हमारे पढ़े–लिखे वर्ग ने हीन–कर्म समझकर छोड़ दिया है। प्रेमचन्द इस मूल की ओर इंगित करते हैं और यह बताते हैं कि यदि हमें सरल जीवन की स्वाभाविकता चाहिए तो हमें थोड़े में संतोष करना सीखना होगा। ग्राम–जीवन इसी की ओर इशारा करता हैं।[12]

'कर्मभूमि' (1932) प्रेमचंद के प्रौढ़–काल की रचना है। इस उपन्यास की कहानी बनारस की है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने राजनीतिक आन्दोलन के साथ–साथ दलितों के विकास, सूदखोरी तथा किसान संघर्ष का चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रमुख नायक बनारस के प्रसिद्ध सेठ समरकान्त का पुत्र अमरकान्त है। हालाँकि दोनों बाप बेटों में काफी अंतर हैं बाप धन को प्रेम करता है, तो पुत्र समाज को। जब से अमरकान्त छात्रावास में था, तब से उसको समाज और राजनीति में रुचि थी। वह गाँव में जाकर अछूतों के घर उठता–बैठता ही नहीं बल्कि उनके साथ खाता–पीता है और उसके विकास के लिए कार्य करता है। अमरकान्त गांधीवादी विचारधारा से ओतप्रोत पात्र है। वह स्वाधीनता आन्दोलन के माध्यम से अछूतों की समस्याओं के निवारण की कल्पना करता है। प्रेमचंद अछूतों के आन्दोलन का नेतृत्व सवर्णों को सौंपा था। डॉ0 शांतिकुमार और सुखदा अछूतों के मंदिर प्रवेश के लिए आन्दोलन प्रारंभ करते हैं।

'कर्मभूमि' उपन्यास का गूदड़ चौधरी महत्वपूर्ण दलित पात्र है। जमींदारों और सरकार से शोषित गूदड़ चौधरी दबा हुआ व्यक्तित्व है। उसे आने वाले कम के खाने की चिंता हमेशा रहती है। मूक जानवर की तरह वह मालिक का काम करता है। शराबी, अज्ञानी शोषित गूदड़ चौधरी अमरकान्त के सम्पर्क में आकर सुधर जाता है। अमरकान्त का मानना था कि जहाँ सौ में अस्सी लोग भूखों मरते हों, वहाँ दारू पीना, गरीबों का रक्त पीने के बराबर है। अमरकान्त की इसी प्रकार की विचारधारा के फलस्वरूप गूदड़ चौधरी काफ सुधर जाता है। ऊपर से अन्य दलितों को सुधारने में जुट जाता है। अमरकान्त के संपर्क में आकर गाँव के दलितों ने मुर्दा–मांस न खाने का निर्णय लिया। गूदड़ चौधरी गाँव वालों को समझाता है कि सारी दुनिया दलितों को अछूत समझती है– उसका मूल कारण मुर्दा–मांस खाना है। उदाहरण– ''सारी दुनिया हमें इसलिए तो अछूत समझती है कि हम शराब पीते हैं, मुर्दा–मांस खाते हैं और चमड़े का काम करते हैं। और हममें क्या बुराई है? शराब हमने छोड़ ही दी–हमने क्या छोड़ दी समय ने छुड़वा दी। फिर मुर्दा–मांस में क्या रखा है?[13]

इस प्रकार गाँव में एक नयी चेतना जागती है। कई लोगों ने मुर्दा–मांस खाना बंद कर दिया, शराब छोड़ दी। पहाड़ी गाँव में नयी विचारधारा बहने लगी। प्रेमचंद जी इस बारे में लिखते हैं– ''कई महीने गुजर गये। गाँव में फिर मुर्दा–मांस न आया। आश्चर्य की बात तो यह थी कि दूसरे गाँव के चमारों ने भी मुर्दा–मांस छोड़ दिया। ... सारे गाँव में एक नया जीवन प्रभावित होता हुआ जान पड़ता। छूतछात का जैसे लोप हो गया था। दूसरे गांवों की ऊँची जातियों के लोग भी अक्सर आ जाते थे।''[14]

भारत प्राचीन संस्कारों से ग्रसित है। धार्मिक ग्रंथ के आधार पर कर्मवाद का प्रतिपादन किया जाता है। अपने वर्तमान जीवन में मिलने वाले सुख–दुःख को पूर्व जन्म कर्म में किये गये कार्यों का फल समझा जाता है। वह समाज अंधविश्वास से ग्रसित था, जिसे दूर कर प्रेमचंद समाज में एक नयी चेतना लाना चाहते थे। उनको मालूम था कि जब–तक अंधविश्वास हटेगा नहीं तब तक दलितों के विकास की कल्पना नहीं कर सकते। इसलिए प्रेमचंद ने गूदड़ चौधरी द्वारा अमरकान्त से इस बात का जोर–शोर से प्रतिपादन किया है। अमीरी और गरीबी यह पूर्वजन्म का फल न होकर सवर्णों और अमीरों की मतलबी समाज व्यवस्था की देन थी। गूदड़ चौधरी इसलिए तो कहता है– ''लोग समझते रहें कि भगवान ने हमको गरीब बना दिया, आदमी का क्या दोष, पर यह कोई न्याय नहीं है कि हमारे बाल–बच्चे तक काम में लगे रहें और पेट भर

भोजन न मिले और एक–एक अफसर को दस–दस हजार की तलब मिले।''[15] गूदड़ चौधरी के इस बयान में दलितों की दयनीयता की स्थिति का संकेत है।

प्रेमचंद की दूरदेशी दृष्टि ने बहुत पहले जान लिया था कि दलितों की समस्याओं के मूल में आर्थिक शोषण भी है। प्रेमचन्द को पता था कि इस प्रजा में शराब, मुर्दा–मांस खाने की प्रवृत्ति में सुधार हुआ तो जरूर शिक्ष की ओर बढ़ेंगे। शिक्षित हुए बिना तथा आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हुए बिना उनका उद्धार नहीं हो सकता। जिस दिन आर्थिक दृष्टि से वे सुधर जाएंगे, उस दिन उनकी सभी बंदिशें भी अपने आप खत्म हो जायेंगी।

'कर्मभूमि' उपन्यास में दलितों की आवास समस्या को भी उठाया है। म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य मालेदूज़ार लोगों की सेवा में योगदान देते हैं। दलितों की झोपड़ियो की ओर उनका ध्यान आकर्षित नहीं होता। इस कारण सभी दलित जातियाँ पहली बार संगठित होकर आन्दोलन का रास्ता अपनाती हैं। इस उपन्यास का एक दलित पात्र मुरली खटीक विद्रोही स्वर में कहता है–

''किसी को महल और बंगला चाहिए, हमें कच्चा घर भी न मिले। मेरे घर में पाँच जने हैं उनमें से दो–चार आदमी महीने भर से बीमार हैं। उस काल कोठरी में बीमार न हों तो क्या हों..... सामने गन्दा नाला बहता है। साँस लेने में नाक फटती है।''[16]

अमरकान्त के पात्र में धीरे–धीरे परिवर्तन आता है। अमरकान्त के माध्यम से लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि आज के नेता कैसे बदल जाते हैं? 'कर्मभूमि' का अमरकान्त दलितों के विकास की बात को करता है, पर उसी के माध्यम से प्रेमचंद ने यह बात भी स्पष्ट की है कि अमरकान्त जैसे लोग समझौतावादी आदमी बन जाते हैं। उनके उदाहरण से लेखक ने स्वाधीनता जैसे आन्दोलन के ऐसे मध्यवर्गीय नेताओं की पोल खोली है, जो क्रान्ति तो करते थे, लेकिन व्यवहार में सत्ता से समझौता और जनता से विश्वासघात करते हैं।

रचनाकार का कर्तव्य क्या होना चाहिए? इस संबंध में प्रेमचन्द का मानना है कि– ''साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इसे कहीं ऊँचा है। वह हमारा पथ प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है। हमारी दृष्टि को फैलाता है।''[17] नंद दुलारे वाजपेयी ने 'कर्मभूमि' उपन्यास की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–

''कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद फिर सामाजिक व राजनीतिक जीवन को अपना विषय बनाते हैं। इसमें न तो 'रंगभूमि' जैसी आदर्शवादिता है और न 'ग़बन' जैसी विषय की एकाग्रता और समाहार है। परंतु यह एक बड़ी कृति है जो सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को नए रूप में रखती है। 'कर्मभूमि' में सामान्य जीवन की धारा व वास्तविकता अधिक है, गाँधीवादी प्रभाव कम है।

प्रेमचंद के सभी उपन्यासों में उपर्युक्त गुण भरा हुआ मिलता है। उनके साहित्य की सरलता, स्वाभाविकता के कारण ही तो वे उपन्यास सम्राट बने हैं। मैं तो कहूँगा कि प्रेमचन्द उपन्यास लिखने में मास्टर माइन्ड थे। 'कर्मभूमि' उनका अद्वितीय उपन्यास है।

हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद का आगमन एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। उनके आने के बाद हिंदी उपन्यास साहित्य में पहली बार आम जनता की कराहें कराहने लगी थीं। कारण, हिन्दी साहित्य को तिलस्मी और ऐय्यारी, जासूसी की दुनिया में से निकालकर जमीनी दुनिया से जोड़ने का काम मुंशी प्रेमचंद ने किया था। प्रेमचंद ने हिन्दी साहित्य जगत को बारह उपन्यास प्रदान किये हैं। उनका बारहवाँ 'मंगलसूत्र' अधूरा उपन्यास है। यह सभी उपन्यास इतने अच्छे लिखे गए हैं कि वे उपन्यास सम्राट बन गये। प्रेमचंद ने उपन्यासों की संरचना के बारे में जो कहा वह यथार्थ है। उन्होंने कहा था– ''उपन्यास की रचना–शैली सजीव और प्रभावोपादक ही होनी चाहिए, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हम शब्दों का गोरखधंधा रखकर पाठकों को भ्रम में डाल दें, कि इसमें जरूर कोई न कोई गूढ़ आशय है..... जनता उन्हीं उपन्यासों को आदर का स्थान देती है जिनकी विशेषता उनकी गूढ़ता नहीं, उनकी सरलता होती है।''[18]

संदर्भ सूची:–

1.प्रेमचन्द के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन–डॉ. सरोज प्रसाद, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद
2.चिट्ठी पत्री, भाग–2, पृ0–207
3.कलम का सिपाही, अमृतराय, पृ0–379
4.निर्मला, प्रेमचंद, पृ0–1
5.वही, पृ0 –16
6.वही, पृ0–1
7.वही, पृ0–1
8.वही, पृ0–35
9.कायाकल्प, पृ0 16
10.सेवासदन, पृ0–54
11.गबन, पृ0–5
12.कर्मभूमि, प्रेमचंद, पृ0 145
13.वही, पृ0 147
14.वही, पृ0 129
15.वही, पृ0 237
16.विगम महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, (संपादक) मनोहर सिंह, रेखा अवस्थी, पृ0 244
17.वही, पृ0 194
18.विगम महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, (संपादक) मनोहर सिंह, रेखा अवस्थी, पृ0 244